रूस-यूक्रेन युद्ध: गांधी के साथ हो समाधान की पहल

प्रेम सिंह

"... इसलिए हमारे युग की सबसे बड़ी क्रांति कार्यप्रणाली की क्रांति है, एक ऐसे तरीके द्वारा अन्याय का प्रतिकार जिसकी प्रकृति न्यायसम्मत हो। यहां सवाल न्याय के स्वरूप का उतना नहीं है जितना उसे प्राप्त करने के उपाय का। वैधानिक और व्यवस्थित प्रक्रियाएं अक्सर काफी नहीं होती। तब हथियारों का इस्तेमाल उनका अक्रिमण करता है। ऐसा न हो, मनुष्य हमेशा वोट और गोली के बीच भटकता न रहे, इसलिए सिविल नाफरमानी की कार्यप्रणाली संबंधी क्रांति सामने आई है। हमारे युग की क्रांतियों में सर्वप्रमुख है हथियारों के विरुद्ध सिविल नाफरमानी की क्रांति, यद्यपि वास्तविक रूप में यह क्रांति अभी तक कमजोर रही है।" ('मार्क्स, गांधी एंड सोशलिज्म', भूमिका)

यह लेख मेरे दो पहले लेखों - 'रूस-यूक्रेन युद्ध: क्यों कारगर नहीं होते नागरिक प्रतिरोध?' और 'अहिंसक मानव सभ्यता के पक्ष में' - की अगली कड़ी के रूप में है। उन दो लेखों को ध्यान में रख कर यह लेख पढ़ा जाएगा तो इस लेख का आशय ज्यादा स्पष्ट होगा।

रूस-यूक्रेन युद्ध आठवें महीने में प्रवेश कर गया है। यूक्रेन के चार प्रांतों को रूस ने अपनी तरफ से जनमत संग्रह करा कर औपचारिक रूप से रूसी फेडरेशन का अंग बना लिया है। यूक्रेन ने नाटो की सदस्यता की कोशिशें तेज कर दी हैं। साथ ही सहयोगी देशों से ज्यादा से ज्यादा हथियार देने और रूस पर ज्यादा से ज्यादा प्रतिबंध लगाने की मांग भी। आशंका यह जताई जा रही है कि यह युद्ध देर-सवेर रूस और पश्चिमी देशों के बीच का युद्ध बन सकता है। रूस की तरफ से परमाणु हथियारों के इस्तेमाल की धमकी युद्ध के शुरुआती दिनों में दी जा चुकी है। उसे फिर से दोहराया गया है। रूस परमाणु अथवा अन्य गैर-पारंपरिक हथियारों का इस्तेमाल करेगा तो यूक्रेन और उसके सहायक देश भी वैसा कर सकते हैं। इस स्थिति से एक बार फिर यह सच्चाई प्रमाणित हो गई है कि आधुनिक सभ्यता की नियामक और संचालन व्यवस्था युद्ध, गृह-युद्ध तथा तरह-तरह के अन्य हिंसक टकराव न तो शुरू होने से रोक पाती है, न शुरू होने पर उन्हें शीघ्र खत्म करने की दिशा में कारगर हो पाती है। इसका सीधा कारण है कि आधुनिक सभ्यता और उसे चलाने वाली विश्व-व्यवस्था (वर्ल्ड ऑर्डर) की नींव मुख्यत: हिंसा के तर्क पर रखी गई है। इस व्यवस्था में हिंसक सभ्यता के पेटे में ही अहिंसा और शांति का कारोबार चलता है।

आधुनिक सभ्यता की वर्तमान दौर की विश्व-व्यवस्था का नियमन/संचालन संयुक्त राष्ट्र संघ एवं उसकी विभिन्न ईकाइयों, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन, विश्व आर्थिक मंच, आर्थिक-सामरिक-भूराजनीतिक हितों के मद्देनजर बनने वाले कुछ चुनिंदा देशों के साझा मंचों/संगठनों, सभी देशों में कायम दूतावासों आदि के जरिए होता है। उपर्युक्त वैश्विक संस्थाओं के तहत काम करने वाली यह विश्व-व्यवस्था अलग-अलग देशों और अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर राजनीतिक-तंत्र, कूटनीतिक-तंत्र, सैन्य-तंत्र, अर्थ-तंत्र, बौद्धिक-तंत्र और धर्म-तंत्र की छह परस्पर गुंथी परतों का समुच्चय होती है। इस व्यवस्था के अंतर्गत एक विशाल एनजीओ-तंत्र सक्रिय रहता है, जिन्हें इस व्यवस्था के सेफ्टी वाल्व कहा जाता है। वैश्विक सस्थाओं के मंचों पर छोटे-बड़े सभी देशों के बीच बराबरी के आधार पर आपसदारी का रिश्ता कायम करने के बजाय वर्चस्व-स्थापन की होड़ लगी रहती है। पांच महाशक्ति देशों के पास किसी भी प्रस्ताव/फैसले को अमान्य कर देने का वीटो अधिकार है, और ये शक्तिशाली देश संयुक्त राष्ट्र के नियम-कायदों का अक्सर उल्लंघन भी करते हैं।

अस्सी के दशक में हुई वाशिंगटन सहमति के बाद से वैश्विक आर्थिक संस्थाएं और विभिन्न देशों का नेतृत्व कॉर्पोरेट पूंजीवाद के सुविधा-प्रदायक (फेसीलीटेटर) बने हुए हैं। डेविड सी कोर्टन अपनी पुस्तक 'व्हेन कॉरपोरेशंस रूल दि वर्ल्ड' में बताते हैं कि इस तरह दुनिया में सुभीते से निगमों का राज चलता है। वाशिंगटन सहमति के साथ शताब्दियों के उपनिवेशवादी वर्चस्व से स्वतंत्र हुए देश एक नए नवउपनिवेशवादी शिकंजे में फंसते चले गए हैं। पिछले चार दशकों से जारी युद्धों समेत तरह-तरह के हिंसक टकराव नवउपनिवेशवादी प्रक्रिया का हिस्सा कहे जा सकते हैं।

इस व्यवस्था में निर्णायक बदलाव आसान नहीं है। इसका कारण इस व्यवस्था की मजबूत किलेबंदी तो है ही, इसका विरोध करने वाले लोगों की तरफ से किए जाने वाले प्रयासों में जरूरी गंभीरता और प्रतिबद्धता नहीं होती। क्योंकि आधुनिक सभ्यता और उसे चलाने वाली व्यवस्था के विरोधियों के मन में हमेशा आधुनिक सभ्यता के पथ पर पिछड़ जाने का डर बैठा रहता है। पूंजीवादी विकास की अवधारणा ने विकसित ही नहीं, विकाशसील और अविकसित देशों की साधारण जनता के दिमाग में भी गहरी जड़ जमाई हुई है। यह डर बैठाने में इस सभ्यता के प्रतिष्ठापकों की बड़ी भूमिका है। वे चाहे पूंजीवादी हों, या साम्यवादी। इस विवादास्पद विषय पर यहां लंबी बहस का अवसर नहीं है। अलबत्ता, यह सोचा जा सकता है कि पिछड़ जाने के डर से मुक्ति पाकर पूजीवाद के शुरुआती चरण से लेकर अभी तक के 'विकास' का एक तटस्थ और भविष्योन्मुख जायजा लिया जाना चाहिए। तभी आगे के लिए न्याय एवं शांति के पक्ष में कुछ कारगर फैसले लिए जा सकते हैं।

अभी तक के अनुभव के आधार पर ज्ञान-विज्ञान की अभी तक घटित हो चुकी भूमिका पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके ही उनकी कोई अलग भूमिका तलाशी जा सकती है। ऐसा करने से आधुनिक सभ्यता की अभी तक की उपलब्धियां कहीं विलीन नहीं हो जाएंगी। ध्यान कर सकते हैं कि यूरोप में रेनेसां की एक अलग समझ और व्याख्या, और उसके आधार पर एक वैकल्पिक आधुनिक सभ्यता का विचार मौजूद रहा है। ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियों को एक हिंसक आधुनिक सभ्यता के पक्ष में नियोजित किए जाने के चलते उस धारा का आगे विकास नहीं हो सका। लिहाजा, यह माना जा सकता है कि आधुनिक सभ्यता अनिवार्यत: हिंसक होने के लिए अभिशप्त नहीं है।

यह विश्व-व्यवस्था रोतों-रात नहीं बदली जा सकती। एक सुविचारित दीर्घावधि योजना के तहत ही इसमें बदलाव लाने की संभावना बन सकती है। अगर ऐसी कोई सच्ची पहल होती है, तो मोहनदास करमचंद गांधी उस प्रयास में सहायक हो सकते हैं। यह सही है कि भविष्य में लंबे समय तक हिंसा पर टिकी भोगवादी दृष्टि आधुनिक सभ्यता के केंद्र में बनी रहेगी। लिहाजा, गांधी के मानव-सभ्यता और आधुनिक सभ्यता के फलसफे को फिलहाल एक तरफ रखा जा सकता है। केवल उनके तरीके को अपनाते चलें, तो आधुनिक सभ्यता को हिंसा की धुरी से उतार कर अहिंसा की धुरी पर रखने की दिशा में कुछ कदम चला जा सकता है। इस यात्रा में गांधी अंतत: सभी के लिए एक अच्छे हमसफ़र साबित होंगे।

गांधी यह प्रयोग कर चुके हैं। उन्होंने एक पराभूत और भयभीत समाज को साहस और दृष्टि प्रदान करके विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली उपनिवेशवादी सत्ता को निर्णायक चुनौती दे डाली थी। उनके प्रयोग का असर पूरे एशिया और अफ्रीका के महाद्वीपों पर भी पड़ा था। 'टाइम' पत्रिका के गांधी पर निकाले गए शताब्दी-पुरुष अंक में नेल्सन मंडेला ने कहा है, "जब औपनिवेशिक मनुष्य ने सोचना छोड़ दिया था और उसका समर्थ होने का अहसास लुप्त हो चुका था, गांधी ने उसे सोचना सिखाया और उसके सामर्थ्य के एहसास को पुनरुज्जीवित किया।" इसके साथ गांधी ने भारत समेत विश्व को अन्याय के प्रतिकार की एक अभूतपूर्व कार्य-प्रणाली से समृद्ध किया।

हम सभी जानते हैं गांधी आधुनिक हिंसक सभ्यता के चक्रव्यूह में गहरे घुस गए थे। लंबे समय तक अहिंसा की ताकत के साथ उन्होंने अपना संघर्ष भी बनाए रखा। लेकिन वे उस चक्रव्यूह से जिंदा वापस नहीं लौट सके। उनका दिखाया रास्ता दुनिया के मंच पर बना रहा है। गांधी के बाद दुनिया की अनेक संघर्षशील विभूतियों ने अन्याय और अत्याचार का प्रतिरोध करने के लिए गांधी के रास्ते को अपनाया। उनमें अफ्रीका के नेल्सन मंडेला, डेस्मंड टूटू, घाना के क्वामे न्क्रूमा, तंजानिया

के जूलियस न्ययेरे, जांबिया के केनेथ कोंडा, अमेरिका के मार्टिन लूथर किंग जूनियर, चेकोस्लोवाकिया के वैक्लाव हैवेल, पोलैंड के लेश वैलेसा, चीन के थ्येनमन चौक के सत्याग्रही, तिब्बत की स्वतंत्रता के अहिंसक आंदोलनकारी, ईरोम शर्मीला आदि के नाम प्रमुखता से आते हैं। भारत में अहिंसा के रास्ते पर आस्था रखने वाले डॉ. भीमराव अंबेडकर, आचार्य नरेंद्रदेव, जयप्रकाश नारायण, डॉ. राममनोहर लोहिया, किशन पटनायक जैसे कई विचारक और नेता रहे हैं। इन सब ने गांधी के अहिंसक संघर्ष की विरासत को समृद्ध किया है।

इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण सवाल यह भी है कि गांधी के साथ अहिंसक सभ्यता की दिशा में पहल क्या भारत से की जा सकती है? गांधी की उपस्थिति में भारत औपनिवेशिक वर्चस्व के बावजूद दुनिया के स्तर पर एक गरिमामय और अनुकरणीय राष्ट्र-समाज के रूप में स्थापित हो गया था। लेकिन अंतिम दिनों में उनकी खुली अवहेलना और अंततः हत्या कर दी गई। हत्या के बाद उनका व्यापार और तिरस्कार करने की प्रवृत्तियां जोर पकड़ती गईं, जो 'नए भारत' में काफी विद्रूप हो गई हैं। ऐसे में भारत से शुरुआत के लिए एक बड़े संकल्प की जरूरत होगी। वैसे भी यह एक सम्मिलित और वैश्विक उद्यम होना चाहिए।

शुरू में दो काम किए जा सकते हैं। पहला, मनुष्य और प्रकृति के रिश्ते की परस्परता, जिसे पूंजीवाद ने प्रतिस्पर्धात्मक बना दिया, फिर से बहाल करना। दूसरा, मानव सभ्यता को हथियार और बाजार की ताकत पर नहीं, मानवता-केंद्रित विचार की ताकत पर आगे बढ़ाना। कहने की जरूरत नहीं की गांधी की मानवता की समझ में मनुष्येतर प्राणी-जगत शामिल था। ताकि पूरी दुनिया के स्तर पर संभव समता के साथ संपन्नता का कभी न खत्म होने वाला खजाना हमेशा खुला रहे। विविध माध्यमों - खास कर शिक्षा, कला और मनोरंजन जैसे माध्यम - से ये दो काम होते चलेंगे, तो हिंसा और उसके साथ नत्थी पर्यावरण विनाश पर रोक लगती चलेगी।

यह काम पहले विद्वानों और बुद्धिजीवियों को हाथ में लेना होगा। दुर्भाग्य से इस समय दुनिया में नेता-बुद्धिजीवियों की उपस्थिति लगभग नगण्य है। यह भी एक वैध कारण बनता है कि आधुनिक सभ्यता के अब तक के विकास का एक जायजा लिया जाए। अहिंसक मानव सभ्यता की दिशा में सच्चा सिलसिला शुरू होगा, तो नेता-बुद्धिजीवी आते जाएंगे। उनके साथ कूटनीतिज्ञों की भूमिका भी बदलती जाएगी। मौजूदा व्यवस्था में काम करने वाले बहुत-से एनजीओ-कर्मी वास्तव में हिंसक सभ्यता से निजात पाना चाहते हैं। उनकी भूमिका भी बदलेगी। वैसे वातावरण में पीढ़ियों की जो नई पौध आएगी, वह मानवता की छाती पर रखे हथियारों के पहाड़ और उनकी तिजारत को एक नई सोच के साथ रोकेगी।

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फ़ेलो हैं।*)